6. वक्रोक्ति-सिद्धान्त

भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में सौन्दर्य तत्त्वों की वस्तुपरक व्याख्या में सबसे अधिक योगदान कुन्तक का है। जब अलंकार एवं रीतिवादी चिंतन को, आनन्दवर्द्धन ने आत्मभूत तत्त्व ध्वनि की स्थापना कर, गौण सिद्ध कर दिया तो कुन्तक ने वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक समस्त सौन्दर्य तत्त्वों की वस्तुगत व्याख्या कर वक्रोक्ति नामक नवीन सिद्धान्त का प्रवर्तन किया। इस प्रकार राजानक कुन्तक वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। किंतु इसके बीज पूर्ववर्ती आचार्यों के विवेचन में विद्यमान हैं।

वक्रोक्ति के प्रतिष्ठापक कुंतक ने बाणभट्ट के - वाक्छल क्रीड़ालाप, परिहास जल्पित, चमत्कार पूर्ण शैली, वचन विदग्धता, आदि वक्रोक्ति शब्द के अर्थों की प ष्ठभूमि में वक्रोक्ति को वैदग्ध्य भंगी भणिति कहा है। उनके अनुसार काव्य-निर्माण की अपूर्व कुशलता से लोकोत्तर चमत्कार प्राण विचित्र कथन ही वक्रोक्ति है। कुन्तक की वक्रोक्ति चमत्कार उत्पन्न करने के कारण ही वक्रयुक्ति है। वक्रोक्ति से ही अर्थ का विभाजन होता है।

वक्रोक्ति का स्वरूप

आचार्य कुन्तक के अनुसार काव्य में शब्द और अर्थ अलंकार्य हैं तथा उन्हें शोभित करनेवाला तत्त्व है- वक्रोक्ति। यह वक्रोक्ति ही काव्य की जीवित (प्राणतत्त्व) है। उन्होंने वक्रोक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है-

''वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगिभणिति तिरुच्यते।''

अर्थात् वैदग्ध्यभंगीभणिति ही वक्रोक्ति होती है। इसे स्पष्ट करते हुए कुन्तक ने कारिका में लिखा है -

'वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीछशी; वैदग्ध्यभंगीभणिति'।
वैदग्ध्यं विद्ग्धभावः कविकर्मकौशलं, तस्य भंगी विच्छित्ति; तया भणितिः।

विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते। अर्थात् प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र वर्णन शैली ही वक्रोक्ति कहलाती है।

कुन्तक की उपर्युक्त विव त्ति का विश्लेषण करने पर अग्रांकित तथ्य निकलते हैं-

1. वक्रोक्ति कथन-प्रणाली या प्रतिपादन पद्धति है। वह अलंकार्य न होकर अलंकार है। वह अलंकार्य न होकर भी काव्यक्षेत्र में इतनी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि काव्य के जीवित (प्राण तत्त्व) पद पर प्रतिष्ठित की जा सके।
2. विचित्र कथन-पद्धति का अर्थ है- प्रसिद्ध कथन-प्रणाली से भिन्न। इस भिन्नता का स्वयं कुन्तक ने कई स्थलों पर विवेचन किया है।
3. वक्रोक्ति का आधार है- वैदग्ध्यजन्यचारुता, कवि कौशलजन्य चमत्कार अथवा प्रतिभाजन्य चमत्कार। काव्य में चारुता, चमत्कार, वक्रता, विचित्रता, शोभा और विच्छिति एक ही अर्थ के वाचक हैं। कुन्तक ने इनका एक ही अर्थ में प्रयोग किया है।

4. काव्य का जीवित (प्राण-तत्त्व) होने के कारण वक्रोक्ति के लिए अनिवार्य उपबन्ध (शर्त) है- सहृदयाह्लादकारिता। इसका तात्पर्य यह है कि कुन्तक को वक्रोक्ति के नाम पर शब्द-क्रीड़ा या निक ष्ट काव्य-कौतुक मान्य नहीं है।

इस प्रकार वक्रोक्ति में तीन गुण विद्यमान रहते हैं- (क) शास्त्र तथा लोक-व्यवहार में प्रचलित कथन भंगिमा से भिन्नता, (ख) कवि कौशलजन्य चमत्कार, तथा (ग) सहृदयाह्लादन की क्षमता। यहाँ संक्षेप में उक्त तीन गुणों की आवश्यकता एवं महत्ता पर विचार कर लेना आवश्यक होगा-

(क) **शास्त्र तथा लोक-व्यवहार में प्रचलित कथन भंगिमा से भिन्नताः** कुन्तक काव्य के सौन्दर्यशास्त्रीय पक्ष की ओर पूर्णतः जागरुक थे। उसके महत्त्व का उद्घाटन करते हुए वे वक्रोक्ति को लोक एवं शास्त्र की रूढ़ कथन-भंगिमा से भिन्न घोषित करते हैं। शास्त्र की भाषा वैज्ञानिक या दार्शनिक मन का उत्पादन है। वैज्ञानिक के समक्ष विषय का सम्यक् प्रतिपादन ही लक्ष्य रहता है। इसके विपरीत कवि भाषा को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक तथा व्यंजना प्रधान बनाने का प्रयास करता है। कवि तथा वैज्ञानिक की भाषा का अन्तर स्पष्ट करते हुए स्वर्गीय दिनकर जी कहते हैं-

''वैज्ञानिक और कवि शब्द तो प्रायः एक ही कोश से लेते हैं, किंतु शब्दों को वाक्य के भीतर बिठाने में दोनों के तरीकों में भेद पड़ जाता है। कवि शब्दों को इस उद्देश्य से बिठाता है कि वे अपनी ध्वनि को झंक त कर सकें। x x x वैज्ञानिक एक शब्द से एक ही अर्थ लेना चाहता है और न स्वयं आवेश में आता है और न अपने शब्दों द्वारा दूसरों को आविष्ट बनाना चाहता है।

काव्य-भाषा लोक-व्यवहार की भाषा से भिन्न होती है। लोकभाषा में उद्देश्य होता है- विचार-विनिमय, अतः व्यक्ति ऐसी भाषा का प्रयोग करता है, जो प्रचलित, स्पष्ट एवं साधारण हो। वहाँ न भाषा-सौन्दर्य का महत्त्व है और न कलात्मक अभिव्यंजना का। इसके विपरीत काव्य-भाषा भावों एवं विचारों की अभिव्यंजना तो करती ही है, कलात्मक प्रभाव डालती है। सौन्दर्य-सर्जन उसका प्रधान गुण है। जिस प्राकर सेल्स गर्ल ग्राहक को वस्तुएँ ही नहीं बेचती बल्कि अपनी मधुर वाणी, शिष्ट व्यवहार, रूप माधुरी आदि से उस पर आकर्षक प्रभाव भी डालती हैं। उसी प्रकार काव्य-भाषा भावों और विचारों को अभिव्यक्त ही नहीं करती, अपितु सहृदय पाठक पर अपना सौन्दर्य शास्त्रीय प्रभाव भी डालती है।

इस प्रकार काव्य-भाषा को शास्त्र-भाषा एवं लोकभाषा से प थक् कर कुन्तक उसके सौन्दर्य शास्त्रीय पक्ष का ही उद्घाटन कर रहे हैं।

(ख) **कवि कौशलजन्य चमत्कारः** कुन्तक वक्रोक्ति का आधार कवि कौशलजन्य चमत्कार मानते हैं। चमत्कार के कवि कौशल पर आधारित होने का तात्पर्य यह है कि वह निक ष्ट कोटि का न होकर, आभिजात्य गुण से समन्वित होना चाहिए। कुन्तक ने अपने ग्रंथ में अनेक ऐसे श्लोक उद्ध त किए हैं, जिनमें रचयिताओं ने प्रणयन-पाटव-विषयक न्यूनताएँ छोड़ दी हैं। साथ ही संशोधन भी प्रस्तुत किए हैं। हिन्दी का एक छंद लेकर कवि-कर्म की न्यूनता पर प्रकाश डाला जा सकता है। छन्द है-

मतव्यथित हो पुष्प किसको
सुख दिया संसार ने,
स्वार्थमय सबको बनाया
है यहाँ करतार ने।

उक्त छन्द में मुरझाये फूल को सम्बोधित किया गया है। यहाँ यदि 'पुष्प' के स्थान पर सुमन शब्द रख दिया जाए तो छन्द का अर्थ एवं सौन्दर्य द्विगुणित हो जाएगा। कविकर्म की द ष्टि से कवि को असावधान ही कहा जाएगा। इस प्रकार कुन्तक कवि-कर्म-कौशल को वक्रोक्ति का अनिवार्य आधार मानते हैं।

(ग) **सहृदयाह्लादन की क्षमताः** वक्रोक्ति का कुन्तक ने एक निश्चित प्रयोजन रखा हैः सहृदय के हृदय को आनन्दित करने की क्षमता। विचारने पर स्पष्ट हो जाता है कि कवि-कर्म-कौशल को वक्रोक्ति का मूलाधार है और सहृदयाह्लादन की क्षमता उसका प्रयोजन। जहाँ काव्योक्ति में कवि-कर्म-कौशल का अभाव होगा, वहाँ वह सहृदय के हृदयाह्लादन में भी असमर्थ होगी। वस्तुतः कुन्तक यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि उदात्त भाव की कवि-कौशल से परिपूर्ण अभिव्यक्त ही काव्य है।

कुन्तक के उक्त मन्तव्य को एक उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है। नयी कविता का एक छन्द दर्शनीय है।

उधर टेबुल पर बैठी है
पीलिया के रोगी सी
धँसी-धँसी आँखों वाली
आफिस गर्ल्स-
कोठों पर रात गुजारकर सुबह-सुबह सोई।
थकी वेश्याओं की तरह।

उक्त छन्द में आफिस गर्ल्स का चित्रण है। उनकी शारीरिक, क शता, रुग्णता आदि के साथ कवि ने उनके जीवन में प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता, आशा एवं उल्लास के नितान्त अभाव को भी अभिव्यक्ति का विषय बनाया है। आज के आफिस का यथार्थ चित्र है, किन्तु कवि ने अभिव्यक्ति में प्रतिभा-दारिद्रय को व्यक्त किया है। उसने जो उपमान चुना है वह उचित नहीं है। वह विषय के स्पष्टीकरण में सहायता कम कर रहा है, घ णा अधिक उत्पन्न कर रहा है। कवि को साद श्य-योजना प्रस्तुत करके उनके जीवन की दयनीयता को व्यक्त करना चाहिए था, उल्टे उनके प्रति घ णाभाव उत्पन्न कर दिया है, जो न काव्य का उद्देश्य है और न यथार्थ चित्रण का।

उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि-कौशल वक्रोक्ति का मूल आधार है और सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने की क्षमता उसका प्रयोजन। आधार एवं प्रयोजन दोनों में कार्यकारण सम्बन्ध है।

वक्रोक्ति के भेद

कुन्तक ने वक्रोक्ति के भेद, व्याकरण तथा काव्यशास्त्र के समन्वित आधार पर किए हैं। भाषा की सूक्ष्मतम इकाई है - वर्ण और स्थूलतम है - वाक्य। इन दोनों के मध्य में पद स्थित है, जिसे व्याकरणिक द ष्टि से प्रक ति और प्रत्यय नामक दो भागों में विभाजित किया गया है। कुन्तक ने इन्हीं के भेदों को आधार बनाया है। इस प्रकार कुन्तक ने व्याकरण कथा काव्यशास्त्र का समन्वित आधार लेकर वक्रोक्ति के छः भेद किए हैं-

1. वर्णविन्यास वक्रता
2. पदपूर्वार्द्ध वक्रता

3. पदपरार्द्ध वक्रता
4. वस्तु या वाक्य वक्रता
5. प्रकरण वक्रता
6. प्रबन्ध वक्रता

1. **वर्णविन्यास वक्रताः** इस वक्रता के अन्तर्गत कुन्तक ने व्यंजन वर्णों से उत्पन्न होनेवाले समस्त सौन्दर्य-प्रकारों को लिया है। प्राचीन आचार्यों द्वारा वर्णित अनुप्रास तथा यमक शब्दालंकारों का उन्होंने इसी वक्रता में अन्तर्भाव किया है। कुन्तक ने इस वक्रता के कई भेदों का उल्लेख किया है। इन्हें संक्षेप में बताना ही युक्तिसंगत है।

प्रथम प्रकारः वर्ण-विन्यास वक्रता का प्रथम प्रकार वह है, जहाँ स्वल्प व्यवधान के साथ एक या एकाधिक वर्णों का सन्निवेश सौन्दर्य सम्पन्न प्रतीत होता है। स्वल्पान्तर को कुन्तक ने संगीत-स ष्टि के लिए आवश्यक माना है, अन्यथा अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। एक उदाहरण -

इस करुणा-कलित ह्रदय में,
क्यों विकल रागिनी बजती।

यहाँ स्वल्प अन्तर के साथ 'क' की सुन्दर आव त्ति हुई है।

द्वितीय प्रकारः जहाँ ककार से लेकर मकार तक पाँचों वर्गों के व्यंजन अन्तिम वर्ण के साथ संयुक्त हो, त, ल एवं न द्वित्व रूप में निबद्ध हो या शेष वर्गों का रकार के साथ संयोग हो, वहाँ यह भेद होता है। यथा

बस एक श ंग पर हिम का,
था कम्पित कंचन झलमल।

त तीय प्रकारः त तीय प्रकार वह है, जहाँ बिना व्यवधान के एक या एकाधिक वर्णों का विन्यास विशिष्ट सौन्दर्य उत्पन्न करता है। यथा-

सीत्-सीत् करनी बयार है बह रही,
बरस रहा खेतों में हिम हेमन्त है।

यहाँ 'सीत्-सीत्' में कई वर्णों की बिना व्यवधान के आव त्ति दर्शनीय है।

चतुर्थ प्रकारः चतुर्थ प्रकार वह है, जहाँ ऐसा लगता है, जैसे एक सुकुमार वर्ण को अनायास आव त्त कर छोड़ दिया गया हो और दूसरे वर्ण की आव त्ति स्वयं चल पड़ी हो। एक उदाहरण पर्याप्त है-

आज है केसर रंग रँगे
ग ह द्वार नगर वन
जिनके विभिन्न रंगों में रँग गयी
पूनो की चन्दन चाँदनी

पंचम प्रकारः पंचम प्रकार वह है जहाँ एक या एकाधिक सद श्य श्रुतिवाले वर्णो का व्यवहित या अव्यवति उपनिबन्ध होता है, जिनका अर्थ भिन्न-भिन्न हुआ करता है और जो श्रुतिरंजक होने के साथ-साथ वर्ण्यविषय के औचित्य से पूर्ण रहा करता है। निःसंदेह यह यमक ही है-

तरणि के संग तरल तरंग में
तरणि डूबी थी हमारी ताल में

यहाँ प्रथम 'तरणि' का अर्थ है सूर्य और द्वितीय का नौका।

कुन्तक ने वर्ण-विन्यास के पाँच प्रकारों का विवेचन किया है।

2. **पदपूर्वार्द्ध वक्रताः** संस्क त-व्याकरण में पद, प्रक ति एवं प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। यदि पाचक शब्दों को लें तो यहाँ पच् धातु है, जिसे प्रक ति कहा जाता है और ण्वुल प्रत्यय। इसी व्याकरणिक आधार पर ही कुन्तल ने पदवक्रता को दो भागों में विभाजित कर प्रक ति पक्ष को पदपूर्वार्द्ध और प्रत्यय पक्ष को पदपरार्द्ध नाम दिया है। पदपूर्वार्द्ध वक्रता के निम्न उपभेद हैं-

(क) **रूढ़िवैचित्र्य वक्रताः** जहाँ लोकोत्तर तिरस्कार या प्रशंसा के उद्देश्य से वाच्यार्थ की रूढ़ि से असम्भव अर्थ के अध्यारोप से युक्त अथवा किसी विद्यमान धर्म के अतिशय के आरोप से गर्भित रूप में प्रतीत होती है, वहाँ रूढ़िवैचित्र्य वक्रता होती है।

(ख) **पर्याय वक्रताः** जब कवि किसी शब्द का इस प्रकार प्रयोग करता है कि उस शब्द से जो अर्थ ध्वनित होता है, वह उसके पर्याय से सम्भव न हो तो उसे पर्याय वक्रता कहते हैं। यथा-

बार-बार है किया पराजित
सुधापायियों को असुरों ने
भागा किया वज्रधर धा-धा
छोड़ हमें इन्द्राणी।

यहाँ इन्द्र के लिए 'वज्रधर' तथा देवताओं के लिए 'सुधापायी' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(ग) **उपचार वक्रताः** जहाँ मूर्त्त उपमेय के लिए अमूर्त्त उपमान तथा अमूर्त्त के लिए मूर्त्त उपमान लाया जाता है, वहाँ उपचार वक्रता होती है। उदाहरण-

सघन बर्फ की कड़ी पर्त सी
एक-एक कर अमिट रूढ़ियाँ
सदियों से जमती जाती हैं
तह पर तह मानव जीवन पर।

यहाँ अमूर्त रूढ़ियों के लिए मूर्त उपमान बर्फ की तह लाया गया है।

(घ) **विशेषण वक्रताः** जहाँ विशेषणों के रम्य एवं सार्थक प्रयोग से काव्य में सौन्दर्य एवं गुण की व द्धि होती है, वहाँ विशेषण वक्रता होती है।

मधु-पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु शाल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

यहाँ प्रसाद जी ने उपमान शाल में शिशु विशेषण वक्रता जोड़कर उसे छरहरी श्रद्धा के उपयुक्त बनाया है।

(ड.) **संव त्ति वक्रताः** जहाँ उक्ति में वैचित्र्य उत्पन्न करने की इच्छा से वस्तु का निगूहन किया जाता है, वहाँ संव त्ति वक्रता होती है।

(च) **प्रत्यय वक्रताः** पद के मध्य में आया हुआ प्रत्यय अपने सौन्दर्य को प्रकाशित करता हुआ सम्पूर्ण छन्द को रसस्निग्ध बना देता है। यह प्रक ति संस्क त भाषा के अनुकूल पड़ती है। हिन्दी के तत्सम शब्दावली में ही इसके उदाहरण मिलते हैं।

(छ) **आगम वक्रताः** यह प्रक ति भी संस्क त भाषा के अनुकूल पड़ती है। आगम से पद में झंक ति उत्पन्न होती है। इसे ही आगम वक्रता कहते हैं। यथा-

विहँसने लगा व्यंग्य से विश्व
अरी ओ रसवन्ती सुकुमार।

यहाँ रसवती की अपेक्षा रसवन्ती पद अधिक रसमयता को व्यक्त कर रहा है।

(ज) **व त्ति वक्रताः** 'व त्ति' शब्द का प्रयोग समास, तद्धित, नामधातु आदि व्याकरणिक व त्तियों के लिए किया गया है। इसे ही व त्ति वक्रता कहते हैं। यथा-

तुम कौमुदी-सी पराग पथ पर,
संचार करती चलो मधुरिमा।

यहाँ माधुर्य का प्रयोग न करके 'मधुरिमा' का प्रयोग किया है।

(झ) **लिंग वक्रताः** जहाँ लिंग-प्रयोग से काव्य में रम्यता उत्पन्न होती है वहाँ लिंग वक्रता होती है। यथा-

किसी नयी तारिका को
नयी-नयी रश्मियों से सजाकर, सँवारकर
नयी रूप स ष्टि
नयी द ष्टि से निहारकर
खो ही गया होगा चाँद

यहाँ चाँद पुल्लिंग तथा तारिका स्त्रीलिंग शब्दों के बल पर अन्यार्थ की प्रतीति हो रही है।

(ा) **क्रियावैचित्र्य वक्रताः** जहाँ क्रिया की विचित्रता से काव्य में अपूर्व चमत्कार उत्पन्न होता है, वहाँ क्रियावैचित्र्य वक्रता होती है। यथा-

झूम-झूम कर मत्त प्रभंजन
करता है भय का संचार।

3) **पदपरार्द्ध वक्रताः** काव्य में प्रत्यय अंश से भी रम्यता उत्पन्न होती है। पुरुष वचन, कारक आदि साधारणतः प्रत्यय में छिपे रहते हैं, इसलिए इस वक्रता को प्रत्यय-वक्रता कहा जाता है। इसके उन्होंने भिन्न भेद किए हैं।

(क) **कालवैचित्र्य वक्रताः** जहाँ कवि वर्तमान के धरातल पर अतीत के चित्र अंकित करता है, वहाँ कालवैचित्र्य वक्रता होती है।

(ख) **कारक वक्रताः** जहाँ कवि सामान्य कारक के विपर्यय से सौन्दर्य उत्पन्न करता है, वहाँ कारक वक्रता कहलाती है। यह काव्य में अपूर्व चमत्कार पैदा करती है-

और सोचो खुद अपनी बात, कि अपना प्रथम प्रेम-संलाप।
सहमकर सकुच गये थे बोल, रह गया मन में मन का ताप।

यहाँ वचनों के सहमकर संक्रमित हो जाने का वर्णन है, जबकि संकोच व्यक्ति का धर्म है। इससे उक्ति में अपूर्व सौन्दर्य का संचार हुआ है।

(ग) **वचन वक्रताः** जहाँ कवि एकवचन के स्थान पर बहुवचन और बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग कर काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न करता है। वहाँ वचन वक्रता होती है। यथा- 'किसके स्वर में आज मिला दोगी वर्षो का गान' यहाँ गान की आन्तरिक अन्विति को व्यक्त करने के लिए एकवचन प्रयुक्त हुआ है।

(घ) **पुरुष वक्रताः** जहाँ पुरुष के विपर्यय से चमत्कार उत्पन्न होता है, वहाँ पुरुष वक्रता कहलाती है। यथा- हाँ, किशोर, यह वही तुम्हारी बाल्य सखी पुतली है।

(ङ) **उपग्रह वक्रताः** आत्मनेपदी और परस्मैपदी धातुओं के प्रसंगोचित प्रयोग से जहाँ चमत्कार उत्पन्न करता है, उसे उपग्रह वक्रता कहा जाता है।

(च) **प्रत्यय वक्रताः** प्रतिभासम्पन्न कवि प्रत्ययों का भी रम्य प्रयोग करते हैं, जिससे काव्य में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है, यही प्रत्यय वक्रता कहलाती है। उदाहरणार्थ- 'बेदर्दी परदेस बसे हैं हूँक करेजवा छायी रे।'

(छ) **उपसर्ग वक्रताः** महाकवि उपसर्गों का भी वस्तु एवं रस के अनुकूल प्रयोग करते हैं- इससे काव्य सौन्दर्य-सम्पन्न हो उठता है। यथा- 'तेरा अधर विचुम्बित प्याला।'

(ज) **निपात वक्रताः** जहाँ निपात के सफल एवं सार्थक प्रयोग से काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न होता है, वहाँ निपात वक्रता होती है। यथा-

हाय ! तुम्हारी नैसर्गिकता मानव-नियम निराला है।
वह तो अपने से ही अपना प्रणय छिपाने वाला है।

यहाँ कवि-हृदय का सम्पूर्ण विषाद हाय में केन्द्रित हो गया है।

4) **वस्तु या वाक्य वक्रताः** वर्णनीय वस्तु का उत्कर्षशाली स्वभाव से सुन्दररूप में वर्णन-वस्तु वक्रता कहलाता है। वस्तु के स्वभाव के अनुरूप कभी कवियों को स्वाभाविक सौन्दर्य प्रकाशित करना अभीष्ट होता है। और कभी रचना-वैचित्र्य से युक्त सौन्दर्य को अंकित करना। प्रथम प्रकार में कवि अपनी प्रतिभा के बल पर वस्तु के स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन करता है- यह सहजता कहलाती है। द्वितीय प्रकार में कवि शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास के बल पर कवि-कौशल द्वारा वस्तु का अंकन करता है- यह आहार्या कहलाती है।

(क) **सहजताः** सहज शोभा में वस्तु का प्रक त वर्णन होता है। ऐसे स्थलों पर वस्तु स्वाभाविकरूप से रमणीय होती है, अतः कवि सूक्ष्म पर्यवेक्षण के आधार पर वस्तु का चित्रांकन करता है, रचना-वैचित्र्य के आधार पर नहीं। रचना-वैचित्र्य से बचने का कारण यह है कि इससे वस्तु के स्वाभाविक सौकुमार्य में मलिनता आने का भय रहता है। साथ ही अलंकारों के मुखर प्रयोग से हृदय का ध्यान वस्तु से हटकर अभिव्यंजना पर केन्द्रित हो जाता है।

यदि अलंकारों का प्रयोग होता भी है तो वस्तु के सहज सौन्दर्य को प्रकाशित करने के लिए ही, न कि वैचित्र्य-प्रदर्शन के लिए।

(ख) **आहार्याः** कुन्तक ने स्पष्ट किया है कि आहार्या प्रस्तुत सौन्दर्यरूपा होने पर भी अलंकार-वैचित्र्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसमें कवि रचना-वैचित्र्य के बल पर वस्तु का कल्पनात्मक चित्र अंकित करता है। वर्ण्य के एक होने पर भी अभिव्यंजना-प्रणाली की भिन्नता के कारण शब्द-चित्रों में विभिन्नता आ जाती है। उदाहरणार्थ-

पति सेवारत साँझ
उमकता देख पराया चाँद
ललकार ओट ही गयी।

यहाँ प्रस्तुत है- सांध्य अरुणिमा के समय चन्द्रोदय तथा संध्या का विलीन हो जाना किंतु कवि-कौशल के आधार पर संध्या में पतिपरायण स्त्री, सूर्य में पति तथा चन्द्र से पाप शुद्धि परपुरुष का आरोपकर विषय को रम्य बना दिया गया है। मानवीकरण के इतने लघु एवं विरल उदाहरण साहित्य में विरल ही हैं।

5) **प्रकरण वक्रताः** प्रबन्ध के एक देश या कथा के एक प्रसंग को प्रकरण कहते हैं। विभिन्न प्रकरणों के समुच्चय से ही प्रबन्ध बनता है। प्रकरण अंग है और प्रबंध अंगी।

कुन्तक ने प्रकरण वक्रता के निम्न भेदों का विवेचन किया है-

(क) **भावपूर्ण स्थलों की उद्‌भावनाः** जहाँ कवि किसी भावपूर्ण स्थल की उद्‌भावना करता है जो प्रमुख पात्र के चरित्र का उत्कर्ष करती हो, प्रबन्ध-लालित्य की अभिव द्धि करता हो, रस को परिपुष्ट करता हो, वह प्रकरण वक्रता का प्रथम प्रकार है। 'रघुवंश' में कौत्स-वरतन्तु प्रकरण इसी प्रकार का है।

(ख) **उत्पाद्य-लावण्यः** प्रसिद्ध इतिव त में कवि कल्पना का मधुर सन्निवेश ही उत्पाद्य लावण्य कहलाता है। इसके दो रूप हैं- अविद्यमान की कल्पना और विद्यमान में संशोधन। कथा की आन्तरिक विवशता के कारण कहीं कवि को अविद्यमान की कल्पना करनी पड़ती है। कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में दुर्वासा के शाप तथा मत्स्य द्वारा अँगूठी-ग्रहण की सुन्दर कल्पना की है, जिससे दुष्यन्त के चरित्र के उन्नयन में सहायता मिली है।

(ग) **प्रकरणों का अनुग्राह्य-अनुग्राहक भावः** परस्पर सुसंगठित एवं अन्वित प्रकरणों के योग से ही प्रबन्ध का निर्माण होता है। अतः प्रबन्ध में सभी प्रकरणों को परस्पर संगठित एवं अन्वित होना चाहिए। कवि को कथा-संगठन के समय मुख्य उद्‌देश्य से सुसम्बद्ध तथा रम्य प्रकरणों की अवतारणा करनी चाहिए।

(घ) **प्रकरण विशेष की अतिरंजनाः** एक ही अर्थ को कवि प्रतिभा के प्रभाव से नूतन अलंकार तथा रस से शोभित करता हुआ अनेक स्थलों पर नवीन रूपों में रखकर शोभादायक बना सकता है। 'साकेत' के नवम सर्ग में उर्मिला के विरह-वर्णन इसका अतिरंजित रूप देखा जा सकता है।

(ङ) **रोचक प्रकरणों की अवतारणाः** सरसता एवं रोचकता की व द्धि के लिए महाकवि नानाविध रोचक प्रसंगों की अवतारणा करते हैं। इनमें जन विहार, उद्यान विहार, प्रभात संध्या, मधुपान, उपवन, नगर वर्णन आदि उल्लेखनीय हैं।

(च) **अवान्तर वस्तु योजनाः** कवि को अपने काव्य में प्रासंगिक कथाओं की विस्त त योजना करनी चाहिए, क्योंकि ये कथाएँ अपना उद्देश्य रखते हुए भी चरितनायक के उद्देश्य में सहायक होती है। इन कथाओं से काव्य में व्यापकता का संचार होता है।

(छ) **गर्भांक योजनाः** कहीं-कहीं काव्य में गर्भांक की योजना की जा सकती है, जिसमें कुछ अभिनेता सामाजिक और अन्य नर बन जाते हैं। इससे काव्य में सरसता एवं रोचकता की व द्धि होती है। राजशेखर ने 'बालरामायण' के त तीय अंक में 'सीता स्वयंवर' नामक गर्भांक की योजना की है।

(ज) **सन्धिविनिवेशः** प्रबन्ध की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सभी पूर्व प्रकरणों का उत्तर प्रकरणों के साथ सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध हो। वस्तुतः यह उपभेद कथासूत्र की मूल आवश्यकता है जिसके अभाव में कवि का सम्पूर्ण कवि-कौशल ही निष्प्रयोजन हो जाएगा।

6) **प्रबन्ध वक्रताः** प्रबन्ध-कल्पना ही कवि-प्रतिभा का निकष है। प्रबन्ध में कवि को दो धरातलों पर द ष्टि रखनी पड़ती है जिस प्रकार प थ्वी अपने अक्ष पर प्रतिदिन परिभ्रमण करती हुई भी वर्ष में सूर्य के चारों की परिक्रमा पूर्ण करती है। कुन्तक ने निम्न भेदों पर प्रकाश डाला है-

(क) **प्रबन्धरस-परिवर्तन वक्रताः** जहाँ प्रतिभासम्पन्न कवि परम्परा प्राप्त कथावस्तु में निरूपित रस सम्पदा की उपेक्षा करके किसी अन्य आह्लादकारी रस में पर्यवसान करने के उद्देश्य से कथामूर्ति में आमूल परिवर्तन करता है, वहाँ यह वक्रता रहती है।

(ख) **समापन वक्रताः** जहाँ कवि उत्तरभाग की नीरसता का परिहार करने के उद्देश्य से, चरित नायक के पोषक, इतिहास प्रसिद्ध कथा के सरस प्रकरण पर कथा की परिसमाप्ति कर देता है, वहाँ समापन वक्रता होती है।

(ग) **कथाविच्छेद वक्रताः** कभी-कभी प्रतिभासम्पन्न कवि गौण कथा को उत्कर्ष प्रदान कर, मुख्य कथा के सहज प्रवाह को विच्छिन्न करते हुए गौणकथा से ही मुख्यकथा की सिद्धि करा देता है। गौणकथा से ही मुख्यकथा की सिद्धि होने से प्रबन्ध में अलौकिक सौन्दर्य स्फुरित होने लगता है।

(घ) **आनुषंगिक फलवक्रताः** जहाँ मुख्यफल की प्राप्ति के लिए उद्यत नायक उसी के समान स्प हणीय अन्य गौण फलों को भी प्राप्त कर लेता है, वहाँ आनुषंगिक फल वक्रता होती है। प्रासंगिक कथाओं के योग से आनुषंगिक फलों की प्राप्ति दिखायी जा सकती है।

(ङ) **नामकरण वक्रताः** प्रतिभासम्पन्न कवि काव्य की उस केन्द्रीय घटना पर नामकरण करके जो सम्पूर्ण प्रबन्ध का सार होती है, काव्य को अपूर्व सौन्दर्य से मण्डित कर देता है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' ऐसा ही नाम है।

(च) **तुल्यकथा वक्रताः** एक ही कथा के आधार पर अनेक महाकवियों द्वारा रचित विभिन्न काव्य या नाट्य ग्रन्थ परस्पर तनिक भी समानता न रखते हुए सहृदयों को आह्लादित करनेवाले सौन्दर्य से सम्पन्न होते हैं।

वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजना

आचार्य शुक्ल ने अपने इन्दौर के भाषण में क्रोचे के मत की समीक्षा करते हुए उनके अभिव्यंजनावाद को भारतीय वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान कहा है। इसकी बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई और कुन्तक तथा क्रोचे के साम्य वैषम्य की परीक्षा आरम्भ हो गई। डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने काव्य

में अभिव्यंजनावाद नामक ग्रंथ में, तत्पश्चात् रामनरेश शर्मा ने वक्रोक्ति और अभिव्यंजना शीर्षक से दोनों मतों का निरूपण किया और स्पष्ट किया कि दोनों में समता कम तथा विषमता अधिक है। डॉ० नगेन्द्र ने 'हिंदी वक्रोक्ति जीवित' की टीका की भूमिका में इस मत की समीक्षा की है।

उपर्युक्त मतों के आधार पर कुन्तक और क्रोचे के साद श्य और वैषम्य को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है-

साम्यः

(1) दोनों ही आचार्य अभिव्यंजनों को काव्य का प्राण तत्त्व मानते हैं।

(2) दोनों कलावादी आचार्य हैं।

(3) दोनों आचार्य काव्यतत्त्व उक्ति में मानते हैं वस्तु या भाव में नहीं।

(4) दोनों की द ष्टि में सौन्दर्य अखण्ड हैं।

वैषम्यः

(1) वक्रोक्तिवाद का सम्बन्ध उक्ति वक्रता से है, अभिव्यंजना का दर्शन है।

(2) वक्रोक्तिवाद साहित्यिकवाद है, अभिव्यंजनावाद अभिव्यंजना का दर्शन है।

(3) वक्रोक्तिवाद कवि कौशल है, अभिव्यंजनावाद में सहजानुभूति है।

(4) वक्रोक्तिवाद में अलंकार मान्य है अभिव्यंजनावाद में उसकी सत्ता अमान्य है किन्तु आ जाने पर सहज उक्ति रूप में ही आते हैं।

(5) वक्रोक्तिवाद मूर्त्त रूपों पर केन्द्रित है जबकि अभिव्यंजनावाद सूक्ष्म आध्यात्मिक क्रिया पर आधारित है।

(6) वक्रोक्तिवाद में वस्तु की सत्ता उक्ति से प थक है अभिव्यंजनावाद में दोनों अभिन्न है।

वक्रोक्ति सिद्धान्त का मूल्यांकनः

वक्रोक्ति एक व्यापक काव्य सिद्धान्त है। इसके अन्तर्गत कुन्तक ने एक ओर वर्ण- चमत्कार, शब्द-सौन्दर्य, अप्रस्तुत विधान, प्रबन्ध कल्पना आदि समस्त काव्यांगों का और दूसरी ओर अलंकार, रीति-ध्वनि और रस आदि सभी काव्य-सिद्धान्तों का समाहार करने का प्रयास किया है। काव्य सौन्दर्य के समस्तरूप-सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वर्ण चमत्कार और व्यापकरूप प्रबंध कौशल तक सभी वक्रता के प्रकार है। अलंकार, रीति आदि वक्रता के पोषक तत्त्व हैं। अतः वक्रोक्ति का प्रथम गुण उसकी व्यापकता है।

कुन्तक ने रस को वक्रोक्ति का सबसे सम द्ध अंग माना है, परन्तु अंगी वक्रता ही है। इसके फलस्वरूप रस के अभाव में भी वक्रता की स्थिति सम्भव है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि वक्रता काव्य का अनिवार्य माध्यम है। परन्तु वह उसका जीवित या प्राण तत्त्व नहीं है। अनिवार्य माध्यम का भी अपना महत्त्व है। व्यक्तित्व के अभाव में आत्मा की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। फिर भी व्यक्तित्व आत्मा अथवा जीवित तो नहीं है। यही वक्रोक्तिवाद की सीमा है।

भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में वक्रोक्तिवाद को छोड़कर ध्वनि के अतिरिक्त इतना व्यवस्थित विधान किसी अन्य सिद्धान्त का नहीं है। काव्यशास्त्र में कला का गौरव स्वतः सिद्ध है। कला का विवेचन इसके विवेचन के समान ही महत्त्वपूर्ण है। वक्रोक्ति सिद्धान्त ने इसी कला की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुतकर अपूर्व योगदान किया है।